॥ श्री हरि ॥
॥ श्री सीताराम चन्द्रांभ्यो नम: ॥

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान – सुन्दरकाण्ड

साभार:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥

विषय सूची

वाणी शुद्धि 4

राम नाम की महिमा 6

प्रश्न समाधान 9

सत्संग की महिमा 12

श्री गणपति वंदना 13

पूजा प्रारंभ 13

श्री रामायणजी की आरती 16

पाठ प्रारंभ 17

पञ्चम सोपान: सुन्दरकाण्ड 21

मंगलाचरण 21

हनुमान्‌जी का लंका को प्रस्थान, सुरसा से भेंट, छाया पकड़ने वाली राक्षसी का वध 22

लंका वर्णन, लंकिनी वध, लंका में प्रवेश 26

हनुमान्‌-विभीषण संवाद 30

हनुमान्‌जी का अशोक वाटिका में सीताजी को देकर दुःखी होना और रावण का सीताजी को भय दिखलाना 33

श्री सीता-त्रिजटा संवाद 38

श्री सीता-हनुमान्‌ संवाद 39

हनुमान्‌जी द्वारा अशोक वाटिका विध्वंस, अक्षय कुमार वध और मेघनाद का हनुमान्‌जी को नागपाश में बाँधकर सभा में ले जाना 47

हनुमान्‌-रावण संवाद 51

लंकादहन 56

लंका जलाने के बाद हनुमान्‌जी का सीताजी से विदा माँगना और चूड़ामणि पाना 59

समुद्र के पार वापस आना , सबका लौटना, मधुवन प्रवेश, सुग्रीव मिलन, और श्री राम-हनुमान्‌ संवाद 60

श्री रामजी का वानरों की सेना के साथ चलकर समुद्र तट पर पहुँचना 69

मंदोदरी-रावण संवाद 71

रावण को विभीषण का समझाना और विभीषण का अपमान 74

विभीषण का भगवान्‌ श्री रामजी की शरण के लिए प्रस्थान और शरण प्राप्ति 80

समुद्र पार करने के लिए विचार, रावणदूत शुक का आना और लक्ष्मणजी के पत्र को लेकर लौटना 91

दूत का रावण को समझाना और लक्ष्मणजी का पत्र देना 95

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध और समुद्र की विनती, श्री राम गुणगान की महिमा 100

श्री राम स्तुति 106

हनुमान जी की आरती 107

भजन सेवा 108
क्षमा- प्रार्थना 109
शांति प्रार्थना 109
॥अथ नामरामायणम्॥ 111

वाणी शुद्धि

ॐ श्री रामचंद्राय नम:

ॐ वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्मस्य च वक्षति ।
यस्यास्ते हदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे ॥

विश्वसर्गविसर्गादि नवलक्षणलक्षितम् ।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥

प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन-विभीषण-युधिष्टिरादीन् पुण्यानिमान् परम-भागवतान् स्मरामि॥

वांछा कल्पतरुभ्यश्च कृपा-सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

ऊँ नमो गोभ्य: श्रीमतीभ्य: सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्चच पवित्राभ्यो नमो नम: ॥

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किएँ नासत विघ्न अनेक ॥

चार युगन में भक्त्जे तिनके पद की धूरी
सर्वस्व सिरधरि राखिह्यों मेरी जीवन मूरी॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

बंदउ तुलसी के चरण जिन्ह कीन्हो जग काज ।
कलि समुद्र बूढ़त लख्यो प्रकट्यो सप्त जहाज॥

नमोस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्येच तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोस्तु रुद्रेंद्रयमानिलेभ्यो नमोस्तु चंद्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥

श्री राम जय राम, जय जय राम, श्री राम जय राम, जय जय राम
श्री राम जय राम, जय जय राम ,श्री राम जय राम, जय जय राम
जय रघुनन्दन जय सिया राम, जानकी वल्लभ सीता राम
जय जय राधा, जय श्री श्याम, राधा वल्लभ राधे श्याम
श्री राम जय राम, जय जय राम, श्री राम जय राम, जय जय राम

श्री सीता राम नाम महाराज की जय

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे ।
घोर भव नीरनिधि नाम निज नाव रे ॥१॥

एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि रे ।
ग्रसे कलि-रोग जोग-सञ्जम-समाधि रे ॥२॥

जग नभ-बाटिका रही है फलि फुलि रे ।
धुआँ कैसो धव रहर देखि तू न भूलि रे ॥३॥

भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो बाम रे ।
राम नामही सौँ अन्त सबही को काम रे ॥४॥

राम नाम छाड़ि जो भरोसो करें और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगइ कूर कौर रे॥५॥

राम नाम की महिमा

राम नाम मनीदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसि उजियार ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तुम अपने अन्दर और बाहर प्रकाश चाहते हो अर्थात इस लोक और परलोक को सुधारना चाहते हो तो मुखरूपी दरवाजे की देहली जीभ पर सदैव राम नाम रूपी मणि का दीप प्रज्वल्लित रख को अर्थात् जीभ से अहर्निश श्रीराम-नाम का जप करते रहो॥६॥

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि।
तुलसी सुमिरहु रामको नाम सजीवन मूरि ॥

सगुण रूप के ध्यान में रुचि है नहीं और निर्गुण स्वरूप मन से अत्यंत दूर है अर्थात समझ से परे है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसी दशा में रामनाम का जप संजीवनी बूटी के समान है ॥८॥

नाम राम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥

श्रीरामजी का नाम अङ्क है और अन्य साधन शून्य हैं। अङ्क न रहनेपर तो कुछ भी हाथ में नहीं रहता, परंतु शून्य के पहले अङ्क आने पर वह दसगुने हो जाते हैं ॥१०॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥

श्रीराम नाम कल्पवृक्ष के समान है कलियुग में कल्याण का निवास है, जिसका जप करने से तुलसीदास भी भाँग से तुलसी के समान पवित्र हो गया ॥११॥

राम नाम जपि जीहँ जन भए सुकृत सुखसालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जीभ से रामनाम का जप करके लोग पुण्यात्मा और परम सुखी हो गये; परंतु इस नाम-जप में जो आलस्य करते हैं, उन्हें तो आज अथवा कल नष्ट हुआ ही समझो ॥ १२ ॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुर बिनिआ की बानि ॥

तुलसी दास जी कहते हैं कि दीनों के बंधू श्रीराम का नाम ऐसा है, जो जपनेवाले को अपना मान कर राज पद तक देता है। परंतु यह मन ऐसा अविश्वासी है कि कूड़े के ढेर में पड़े दाने चुगने की आदत नहीं छोड़ता ॥१३॥

कासीं बिधि बसि तनु तजें हठि तनु तजें प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ राम नाम अनुराग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि काशी में निवास करते हुए शरीर त्यागने पर और तीर्थराज प्रयाग में हठ से शरीर छोड़ने पर जो फल प्राप्त होता है, वह रामनाम में अनुराग होने से सुगमतासे प्राप्त हो जाता है। ॥१४॥

मीठो अरु कठवति भरो रौंताई अरु छैम।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥

पदार्थ मीठा भी हो और इच्छा अनुसार भी मिले, राज भोग भी प्राप्त हों और कुशल क्षेम भी बना भी रहे, स्वार्थ भी पूरा हो तथा तथा परमार्थ भी सम्पन्न हो ऐसा होना केवल श्रीरामनाम के प्रेम से ही सुलभ हो सकती हैं। ॥१५॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन बिख्याति ॥

केवल राम नाम का भजन करने से अत्यंत नीच स्वभाव वालों ने भी सुन्दर कीर्ति को प्रपात कर लिया। स्वर्ग के राजमार्ग पर स्थित होने वाले अपवित्र वृक्ष भी त्रिभुवन में ख्याति प्राप्त कर लेते हैं। ॥१६॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रबेस।
राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन लोगों को लौकिक सुख सपने में भी प्राप्त नहीं होते और परमार्थ में जिनको प्रवेश भी नहीं मिलता, श्रीरामनामका स्मरण करनेसे उनके भी कठिन क्लेश दूर हो जाते हैं ॥१७॥

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥

संसार में मेरा-मेरा सब कहते हैं, परंतु किसी को कुछ नहीं पता वह स्वयं कौन है? और उसका अपना नाम क्या है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि अब इस रहस्य को समझकर मौन हो जाओ और श्रीराम नाम को जपो ॥१८॥

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान।
बैर बालि सुग्रीव कें कहा कियो हनुमान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम जी की शुभदृष्टि से निर्बल भी बलवान् हो जाते हैं। सुग्रीव और बालि के वैर में हनुमानजी ने भला क्या किया? ॥ ११०॥

तुलसी रामहु तें अधिक राम भगत जियँ जान।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम के भक्त को रामजी से भी अधिक समझो। राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्र जी स्वयं ऋणी हो गए और उनके भक्त श्रीहनुमान् जी उनके साहूकार बन गये ॥१११॥

कियो सुसेवक धरम कपि प्रभु कृतग्य जियँ जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि ॥

श्री हनुमान जी ने केवल एक अच्छे सेवक का धर्म ही निभाया। परंतु यह जानकर देवताओं को भी वर देने वाले श्री राम हृदय से ऐसे कृतज्ञ हुए कि हाथ जोड़कर हनुमानजी के सामने खड़े हो गये ॥११२॥

प्रश्न समाधान

सुन्दर काण्ड को सुन्दर क्यों कहा जाता है ?

आदिकवि श्रीवाल्मीकि जी ने श्री रामायण जी रचना करने में सबसे विलक्षण काव्यशैली अर्थात् जोड़, यमक, छन्द आदि वक्तव्य भावों को इसमें सुन्दर रूप से दर्शाया है इसलिए इस काण्ड का नाम 'सुन्दर काण्ड ' नाम रखा। उसी प्राचीन शैली को सभी आचार्यों ने ग्रहण किया है। इसमें वर्णनीय सब कुछ 'सुन्दर' है।

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरः कपिः।
सुन्दरे सुन्दरी वार्ता अतः सुन्दर उच्यते॥'

बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड इन नामकरणोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु सुन्दरकाण्ड नामकरण में विशेषता है।

रामायण के विषय में कहा जाता है 'रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम्' अर्थात् रामायण 'जनमनोहर' लोगों के मनों को हरनेवाली, अत्यंत ही प्रिय, 'आदिकाव्य'

है। वैसे तो सभी रामायण, चाहे वो आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण हो, चाहे आध्यात्म रामायण, चाहे महारामायण जिसे हम योगवशिष्ठ के रूप में भी जानते हैं चाहे गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस, 'मनोहर' है। परन्तु इसने अंदर 'सुन्दरकाण्ड' अत्यन्त मनोहर है।

जिस प्रकार महाभारत में विराटपर्व महाभारत का सर्वश्रेष्ठ अंश हैं, उसी प्रकार रामायणमें सुन्दरकाण्ड सर्वश्रेष्ठ अंश है। इसके श्रेष्ठ होने का एक और है,

'सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन सुन्दरम्॥'

सुन्दरकाण्डमें राम सुन्दर हैं, कथाएँ सुन्दर हैं, सीता सुन्दर हैं। सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है?

प्रश्न यह हो सकता है 'सुन्दर काण्ड में श्री राम की कथा तो है नहीं, तब 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' क्यों कहा गया?' इसका उत्तर यह है कि, सुन्दरकाण्ड में प्रधान चरित्र दो हैं-श्रीसीता और श्रीहनुमान्। श्रीहनुमान्जी तो भक्त हैं तथा श्रीराम और श्रीसीता अभिन्न हैं। श्रीसीताजी शक्ति हैं और श्रीराम शक्तिमान्। एक होने पर भी शक्ति शक्तिमान की भक्त हैं, सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। क्योंकि श्रीसीताजीका हृदय एक क्षणके लिये भी श्रीरामको नहीं छोड़ सकता (रावणवध के पश्चात् श्रीसीताजी ने अपने को निष्कलंक साबित करनेके लिये अग्नि के समीप जाकर यह वचन कहे थे कि 'यदि मेरा हृदय रघुकुलनन्दन श्रीरामके चरणोंसे क्षणभर के लिये भी दूर नहीं होता तो अखिल विश्व के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें। और रामके सौन्दर्य को लेकर ही सीता त्रैलोक्यसुन्दरी हैं। इसलिए राम ही सीता बनकर सुन्दर हो रहे हैं।

श्रीरामतापनीयोपनिषद में कहा है,

यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् या जानकी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः।'

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् हैं और देवी श्रीजानकीजी भूर्भुव: स्व:रूप व्याहृति हैं। इसलिये उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

राम ही जानकी हैं, जानकी ही राम है इसलिए राम के सौन्दर्य में ही सुन्दरकाण्ड का सौन्दर्य है। इसीलिए कहा गया है 'सुन्दरे सुन्दरो रामः।'

हनुमान् जी ने रावणको अति तुच्छ मानकर कहा था:

'न मे समा रावणकोटयोऽधमाः रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।

अर्थात् रावण-जैसे करोड़ों अधम मेरी समता नहीं कर सकते। मैं श्रीरामका दास हूँ। अत: मेरे पराक्रमका कोई पार नहीं पा सकता। श्रीरामजीका दास होनेके कारण मुझमें अपार विक्रम है। दास होनेसे जहाँ इतना शौर्य-वीर्य प्रस्फुटित हो उठता है, वहाँ भक्तका सौन्दर्य भगवान्का ही सौन्दर्य है। इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' कहा गया।

सुन्दर में सभी सुन्दर हैं का अर्थ हैं की सुन्दर काण्ड में वर्णित सभी कथाएँ सुन्दर हैं अर्थात एक से एक अलौकिक हैं इसलिए 'सुन्दर' नाम केवल इसी काण्ड को दिया जा सकता है। इस काण्डमें एक भी प्रसंग ऐसा नहीं है जिससे आदर न उत्पन्न होता हो। बहुत प्रसंग ऐसे हैं जिनसे मन भी द्रवित होता है।

हनुमान जी कौन हैं

हनुमान जी ही शिवजी हैं तथा शिव जी हनुमान हैं। यह अभेदता गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री राम चरित मानस में अनेकों जगह सूचित की है।

रुद्र देह तजि नेह बस बानर भे हनुमान।
देवमनि रुद्र अवतार संसारपाता।
जयति मर्कटाधीस मृगराजविक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
जयति मंगलागार संसारभारापहर बानराकारविग्रह पुरारी।

अत: स्वयं शंकरजी श्रीहनुमानरूप से अवतरित हुए हैं।

सुन्दरकाण्ड का पाठ अथवा श्रवण क्यों करना चाहिए ?

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए सुन्दर काण्ड का पाठ अथवा श्रवण किया जाता है किसी व्यक्ति के जीवन में ज्यादा परेशानियां हो, कोई काम नहीं बन पा रहा है, आत्मविश्वास की कमी हो या कोई और समस्या हो, सुंदरकांड के पाठ से शुभ फल प्राप्त होने लग जाते हैं, कई ज्योतिषी या संत भी विपरित परिस्थितियों में सुंदरकांड करने की सलाह देते हैं।

ऐसा इसलिए हैं कि सुंदरकांड के पाठ में बजरंगबली की कृपा बहुत ही जल्द प्राप्त हो जाती है। जो लोग नियमित रूप से सुंदरकांड का पाठ करते हैं, उनके सभी दुख दूर हो जाते हैं, क्योंकि इसमें हनुमान जी ने जीवन में सफलता प्राप्त करने के सभी सूत्र बताए हैं चाहे वो कार्य के प्रति समर्पण हो, चाहे अनेक परेशानियों को अपनी बुद्धि के बल पर हराना, चाहे विभिन्न युक्तियों का उपयोग हो अथवा बल का प्रयोग।

सत्संग की महिमा

देहि सतसङ्ग निजङ्ग श्रीरङ्ग भव-भङ्ग-कारन सरन-सोक हारी।
जेतुभवदध्रि-पल्लव-समास्त्रित सदा, भक्तिरत विगत-संसय मुरारी ॥१॥

हे मुरारि लक्ष्मीकान्त ! सत्संग आप का अङ्ग है, वह मुझे प्रदान कीजिए, वह संसार के आवागमन का नाश निर्मूल करने वाला और शरणागतों के शोक का हरनेवाला है दीजिये। जो आप के चरण रूपी पल्लवों के आश्रित रह कर सदा भक्ति में तत्पर रहते हैं वह सन्देह से रहित हो जाते हैं ॥

श्री गणपति वंदना

गाइय श्रीगनपति जगबन्दन । सङ्कर सुवन भवानी नन्दन ॥
सिद्धि सदन गजबदन बिनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥१॥

मोदक प्रिय मुद मङ्गल दाता । विद्या बारिधि बुद्धि बिधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । वसहि राम-सिय मानस मोरे॥२॥

जिनकी संसार वन्दना करता है, जो शङ्कर और पार्वतीजी के आनन्द-दायक पुत्र हैं। सिद्धियों के स्थान, हाथी के समान मुखवाले, माननीय, कृपा के समुद्र सुन्दर और सब प्रकार से योग्य है ॥२॥

जिनको मोदक अत्यंत प्रिय है और जो आनन्द-मंगल के देने वाले, विद्या के सागर तथा बुद्धि के ब्रह्मा अर्थात बुद्धि उत्पन्न करने वाले हैं, ऐसे श्रीगणेशजी का गुण गान करके तुलसीदास हाथ जोड़ कर वर माँगते हैं कि मेरे हृदय (मन्दिर) में श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निवास करें ॥२॥

पूजा प्रारंभ

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।
ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु । ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु । ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ।

आचमन:

ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः ।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । ॐ श्री अविघ्नमस्तु ।

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्न वदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते॥

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
सरस्वतीं प्रणौम्यादौ सर्वकार्यार्थसिद्धये॥

अभीप्सितार्थसिद्धयर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः॥

सर्वेष्वारब्धकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः॥

संकल्प-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवत महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्राणोऽह्नि द्वितीयपराधे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमें कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तेकदेशे....नगरे/ग्रामे/क्षेत्रे वैक्रमाब्दे 2074 संवत्सरे मासोत्तमे मासे ____ मासे ____पक्षे पुण्याय _तिथी ___ गोत्रोत्पन्नः ___नाम,परमेश्वर आज्ञारूप सकल शास्त्र श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल-प्राप्ति द्वारा श्री सीता रामचन्द्र सहित श्री हनुमान देवता चरण अखंड कृपा प्रसादेन, सर्वेषां साधकानां क्षेम, स्थैर्य, अभय, विजय आयुः, आरोग्य, ऐश्वर्य, अभिवृद्ध्यर्थं, सर्व विघ्न उप्शान्त्ये, शीघ्र आध्यात्मिक, लौकिक उन्नति सिद्ध्यर्थं, तथाच समस्त सनातन धर्माभिमानि जनानां सनातन धर्म रक्षण कार्ये सुयश प्राप्त्यर्थं तथाच स्थिर लक्ष्मीप्राप्तये, हेतु श्री रामचरित मानसे सुन्दकांडे पाठ, श्रवण, कीर्तनं करिष्ये।

ॐ श्री सीतारामचन्द्राय नमः ॐ हं हनुमते नमो नमः, आसनं, पाद्यं, अर्घ्यं, आचमनं, स्नानं, दुग्ध स्नानं, दधि स्नानं, धृत स्नानं, मधु स्नानं, शर्करा स्नानं, पंचामृत स्नानं, गंधोक स्नानं, शुद्धोदक स्नानं, आचमनं, वस्त्रं, उपवस्त्रं, मधुपर्कं, आभूषणं, गन्धं, रक्तचंदनम, सिन्दूर, कुंकुमं, पुष्पसारं, अक्षत, पुष्पम, दूर्वा मनसे समर्पयामि

ॐ श्री सीतारामचन्द्राय नमः ॐ हं हनुमते नमो नमः धूपं, दीपं प्रत्यक्षं दर्शानामि

ॐ सकलपूजार्थे गन्धाक्षतपुष्पं समर्पयामि।

श्री रामायणजी की आरती

आरती श्री रामायण जी की।
कीरति कलित ललित सिया-पी की॥

गावत ब्राह्मादिक मुनि नारद। बालमीक विज्ञान विशारद।
शुक सनकादि शेष अरु शारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥
आरती श्री रामायण जी की।
कीरति कलित ललित सिया-पी की॥

गावत वेद पुरान अष्टदस। छओं शास्त्र सब ग्रन्थन को रस।
मुनि-मन धन सन्तन को सरबस। सार अंश सम्मत सबही की॥
आरती श्री रामायण जी की।
कीरति कलित ललित सिया-पी की॥

गावत सन्तत शम्भू भवानी। अरु घट सम्भव मुनि विज्ञानी।
व्यास आदि कविबर्ज बखानी। कागभुषुण्डि गरुड़ के ही की॥
आरती श्री रामायण जी की।
कीरति कलित ललित सिया-पी की॥

कलिमल हरनि विषय रस फीकी। सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।
दलन रोग भव मूरि अमी की। तात मात सब विधि तुलसी की॥
आरती श्री रामायण जी की।
कीरति कलित ललित सिया-पी की॥

पाठ प्रारंभ

सुन्दर कांड का प्रारंभ किष्किन्धा काण्ड के अंतिम दोहे से किया जाता है ऐसा इसलिए है क्योंकि वहां से सुन्दरकाण्ड की भूमिका तैयार होती है।

गृध राज जटायु के बड़े भाई सम्पाती द्वारा वानरों को प्रेरित करने पर सभी वानर इस बात पर विचार कर रहे हैं कि कौन समुद्र के उस पार जाये और सभी अपनी अपनी शक्ति तो तौल कर अपना पक्ष रख रहे हैं तभी जामवंत जी हनुमान से कहते हैं कि हे हनुमान! तुमने चुप क्यों साध रखा है। तुम्हारा तो अवतार ही राम जी के कार्य के लिए हुआ है। स्मरण करवाने पर हनुमान जी विशालकाय हो गए अति उत्साहित होकर सभी वानरों को आश्वासन देने लगे, जब जामवंत ने कहा की यह सब करने में तुम्हारा अधिकार नहीं हैं तब हनुमान जी ने जामवंत जी से पूछा की बताइए मेरा क्या कर्तव्य है? जामवंत जी ने उनसे कहा कि तुम केवल इतना करो कि सीता जी का पता लगाकर आ जाओ। फिर राम जी सेना सहित जाकर रावण को जीत लेंगे और सीता जी को वापस लाएंगे।

ऐसा इसलिए भी है की किष्किन्धा काण्ड के प्रारंभ में तुलसीदास जी ने पहले शिव की स्तुति की है और उसके बाद श्री राम की स्तुति की है पर यह क्रम सुंदरकाण्ड में उलट दिया है क्योंकि सुन्दरकाण्ड से शिव रूप हनुमान जी राम जी के सेवक के रूप में लंका जाते हैं । किष्किन्धा काण्ड और सुन्दरकाण्ड शिव और राम की स्तुति का मिलन है। इसीलिए सुन्दरकाण्ड का प्रारम्भ किष्किन्धा काण्ड के अंतिम दोहे से किया जाता है। तो आइए हम भी उस परम्परा का निर्वाह करते हुए सुन्दर काण्ड का प्रारंभ करते हैं:

दोहा :

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥29॥

बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किंतु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर, श्री हरि के उस विराट शरीर की सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥29॥

चौपाई :

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥1॥

अंगद ने कहा- मैं पार तो चला जाऊँगा, परंतु लौटने के लिए मेरे हृदय में कुछ संशय है। जाम्बवंत ने कहा- तुम सब प्रकार से योग्य हो, परंतु तुम सबके नेता हो, तुम्हे हम कैसे भेज सकते हैं?॥1॥

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥2॥

ऋक्षराज जाम्बवंत ने श्री हनुमानजी से कहा- हे हनुमान्! हे बलवान्! सुनो, तुम इस प्रकार क्यों चुप चाप बैठे हो ? तुम पवन के पुत्र हो और बल में भी पवनदेव के समान हो और बुद्धि-विवेक में तुम विज्ञान की खान हो॥2॥

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥3॥

जगत् में कौन सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुम पूर्ण न कर सको। श्री रामजी का कार्य करने के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। जामवंत के यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वत के आकार के अर्थात अत्यंत विशालकाय हो गए॥3॥

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥4॥

उनका रंग स्वर्ण के समान है, शरीर पर तेज सुशोभित है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह पर्वतों के राजा सुमेरु पर्वत हों। हनुमान्‌जी ने बार-बार सिंहनाद करके कहा- मैं इस खारे समुद्र को खेल खेल में ही लाँघ सकता हूँ॥4॥

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥5॥

और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवंत! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना कि आगे मुझे क्या करना चाहिए?॥5॥

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥6॥

जाम्बवंत ने कहा- हे तात! इस समय तुम केवल इतना ही करो कि लंका जाकर, सीताजी को देखकर, वापस लौट आओ और उनका समाचार श्री राम से कह दो। फिर कमलनयन श्री रामजी अपने बाहुबल से ही राक्षसों का संहार करके सीताजी को ले आएँगे, केवल लीला मात्र के लिए ही वह वानरों की सेना को अपने साथ लें जायेंगे ॥6॥

छंद :

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनि हैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानि हैं॥
जो सुनत गावत कहत समुक्षत परमपद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

जब वानरों की सेना साथ लेकर राक्षसों का संहार करके श्री रामजी सीताजी को ले आएँगे, तब देवता और नारदादि मुनि भगवान् के तीनों लोकों को पवित्र करने वाले उनके सुंदर यश का बखान करेंगे, जिसके केवल सुनने, गाने, कहने और समझने से मनुष्य परमपद को प्राप्त करते हैं और जिसे श्री रघुवीर के चरणकमल का भ्रमर तुलसीदास गाता है।

दोहा :

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥30 क॥

श्री रघुवीर का यश क जन्म-मरण रूपी रोग की अचूक दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु श्री रामजी उनके सभी मनोरथों को सिद्ध करेंगे॥30 (क)॥

सोरठा :

नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥30 ख॥

जिनका नीले कमल के समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को मारने के लिए शिकारी) के समान है, उन श्री राम के गुणों के समूह की लीला को अवश्य सुनना चाहिए॥30 (ख)॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थः सोपानः समाप्त :।

कलियुग के समस्त पापों के नाश करने वाले श्री रामचरित् मानस का यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किंधाकांड समाप्त)

॥श्री गणेशाय नमः॥
श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री रामचरित मानस

पञ्चम सोपानः सुन्दरकाण्ड

मंगलाचरण

श्लोक :

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥1॥

शान्त, सनातन, प्रमाणों से परे, निष्पाप, मोक्षरूप परमशान्ति देने वाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी द्वारा निरंतर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे वरिष्ठ, माया से मनुष्य रूप में दिखने वाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि राम कहलाने वाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥2॥

हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और आप तो स्वयं सबके अंतरात्मा ही हैं अर्थात आप यह सब जानते ही हैं कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी पूर्ण भक्ति प्रदान कीजिए तथा मेरे मन को से काम आदि दोषों को दूर हटा दीजिए ॥2॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥3॥

अतुलित बल के धाम, सोने के पर्वत सुमेरु के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन को भस्म करने के लिए अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान्‌जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥3॥

हनुमान्‌जी का लंका को प्रस्थान, सुरसा से भेंट, छाया पकड़ने वाली राक्षसी का वध

चौपाई :

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥1॥

जाम्बवंत के ऐसे सुंदर वचनों ने हनुमान्‌जी के हृदय को अत्यंत ही आनंदित कर दिया और वह एनी वानरों से बोले कि हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना॥1॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥2॥

जब तक मैं सीताजी को देखकर वापस लौट कर न आऊँ। यह कार्य अवश्य होगा, क्योंकि मुझे अत्यंत ही ही हर्ष का अनुभव हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक झुका कर प्रणाम करने के पश्च्यात तथा हृदय में श्री रघुनाथजी को धारण करके हनुमान्‌जी हर्षित होकर वहां से चल पड़े ॥2॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥3॥

समुद्र के तीर पर एक सुंदर पर्वत था। हनुमान्‌जी खेल खेल में ही कूदकर आसानी से उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्री रघुवीर जी का स्मरण करके अत्यंत बलवान् हनुमान्‌जी उस पर्वत पर से अत्यंत वेग से उछले॥3॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥4॥

जिस पर्वत पर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले, वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। जैसे श्री रघुनाथजी का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्‌जी हवा में उड़ने लगे ॥4॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥5॥

समुद्र ने उन्हें श्री रघुनाथजी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तुम श्री राम ने दूत हनुमान जी की थकावट दूर करने वाले बनो अर्थात् अपने ऊपर उठ कर इन्हें विश्राम करने का अवसर दो॥5॥

दोहा :

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥1॥

हनुमान्‌जी ने मैनाक पर्वत का मान रखते हुए, उन्हें केवल से हाथ से छू भर दिया दिया और फिर प्रणाम करके बोले - श्री रामचंद्रजी का काम किए बिना मुझे विश्राम कहाँ? अर्थात श्री राम का कार्य पूर्ण किए बिना मैं विश्राम कैसे कर सकता हूँ ॥1॥

चौपाई :

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥1॥

देवताओं ने पवनपुत्र श्री हनुमान्‌जी को जाते हुए देखा और उनकी विशेष बल-बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा। सुरसा आकर हनुमान्‌जी से कहा ॥1॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥2॥

आज देवताओं ने मुझे भोजन प्रदान किया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी ने कहा- श्री रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु को सुना दूँ,॥2॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥3॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में स्वयं घुस जाऊँगा अर्थात मैं स्वयं तुम्हारा आहार बन जाऊँगा। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दो। जब किसी भी उपाय से सुरसा ने हनुमान जी को जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जी ने कहा- यदि तुम्हारा यही इच्छा है तो फिर मुझे खा कर दिखाओ ॥3॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥4॥

सुरसा ने योजनभर अर्थात चार कोस में मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को उससे दुगना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजन के हो गए॥4॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥5॥

जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दुगना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन मुख किया। तब हनुमान्‌जी ने अत्यंत ही छोटा रूप धारण कर लिया॥5॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥6॥

और उसके मुख में घुसकर तुरंत बाहर निकल आए और उसे सिर झुका कर विदा माँगने लगे। सुरसा ने कहा- हे हनुमान ! मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिए देवताओं ने मुझे भेजा था॥6॥

दोहा :

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥2॥

तुम अवश्य ही श्री रामचंद्रजी का कार्य पूर्ण करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चल पड़े ॥2॥

चौपाई :

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥1॥

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह अपनी माया के द्वारा आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव-जंतु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर॥1॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान् कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥2॥

उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वह स्थिर होकर उड़ नहीं पाते थे और जल में गिर पड़ते थे इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से भी किया। हनुमान्‌जी ने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥2॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥3॥

पवनपुत्र धीर बुद्धि वीर श्री हनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। उस वन में मधु के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे॥3॥

लंका वर्णन, लंकिनी वध, लंका में प्रवेश

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥4॥

वह वन अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित था। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर तो हनुमान जे मन में अत्यंत प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े॥4॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥5॥

शिवजी कहते हैं- हे उमा! इसमें वानर हनुमान् की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। वह दुर्ग इतना विशाल है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥5॥

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥6॥

वह अत्यंत ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। उसमें सोने के परकोटे का परम प्रकाश हो रहा है॥6॥

छंद :

कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥1॥

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ, अत्यंत ही सुन्दर सोने का परकोटा है, उसके अंदर अनेकों सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुंदर मार्ग और गलियाँ हैं, सुंदर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है! अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यंत बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती॥1॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥2॥

वह दुर्ग वन, बाग, उपवन, फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ से सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गंधर्वों की कन्याएँ भी अपने सौंदर्य से मुनियों के भी मन को मोह लेती हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बड़े ही बलवान् पहलवान गरज रहे हैं। वह अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक-दूसरे को ललकारते हैं॥2॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥3॥

भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा अत्यंत सावधानी पूर्वक नगर की चारों दिशाओं में सभी ओर से रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों को खा रहे हैं। तुलसीदास ने इनकी कथा इसीलिए कुछ थोड़ी सी कही है कि ये निश्चय ही श्री रामचंद्रजी के बाण रूपी तीर्थ में शरीरों को त्यागकर परमगति प्राप्त करेंगें ॥3॥

दोहा:

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरों निसि नगर करौं पइसार॥3॥

नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि मैं अत्यंत छोटा रूप धारण करके और रात के समय नगर में प्रवेश करूँगा॥3॥

चौपाई :

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥1॥

हनुमान् जी ने मच्छर के समान अत्यंत लघु रूप धारण करके, नर रूप से लीला करने वाले भगवान् श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके लंका के अन्दर जाने के लिए चल पड़े। लंका के द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह हनुमान जी से बोली- मेरा निरादर करके अर्थात मेरी आगया लिए बिना तुम कहाँ चले जा रहे हो?॥1॥

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥2॥

हे मूर्ख! तू मुझे समझ ही नही पाया, यहाँ जितने भी चोर आते हैं, वह सभी मेरे ही आहार हैं। यह सुनकर महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढक पड़ी॥2॥

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंच कहा मोहि चीन्हा॥3॥

कुछ समय पश्चात वह लंकिनी नामक राक्षसी अपने को संभालकर उठी और डर के मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। वह बोली- रावण को जब ब्रह्माजी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि-॥3॥

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥4॥

जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्री रामचंद्रजी के दूत का दर्शन इन नेत्रों से कर पा रही हूँ ॥4॥

दोहा :

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥4॥

हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के अन्य समस्त को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, तो भी वह सब मिलकरउस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो क्षण मात्र के सत्संग से होता है॥4॥

चौपाई :

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥1॥

अयोध्यापुरी के राजा श्री रघुनाथजी को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। श्री राम का हृदय में समारं करने से विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है और अग्नि में शीतलता आ जाती है॥1॥

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥2॥

और हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिए धूल के समान हो जाता है, जिसे श्री रामचंद्रजी केवल एक बार कृपा करके देख लेते हैं। तब हनुमान्‌जी ने अत्यंत छोटा रूप धारण किया और भगवान् का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया॥2॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥3॥

उन्होंने एक-एक महल की खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वह रावण के महल में गए। वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥3॥

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥4॥

हनुमान्‌जी ने रावण को सोते हुए देखा, परंतु महल में जानकीजी नहीं दिखाई दीं। फिर उन्हें एक सुंदर महल दिखाई दिया। उसमें भगवान्‌श्री हरि का एक अलग मंदिर बना हुआ था॥4॥

हनुमान्-विभीषण संवाद

दोहा :

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई॥5॥

वह महल श्री रामजी के आयुध धनुष-बाण के चिह्नों से अंकित था और इतना शोभायमान था, उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर कपिराज श्री हनुमान्‌जी अत्यंत हर्षित हुए॥5॥

चौपाई :

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥1॥

और उन्होंने सोचा लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन का निवास कैसे संभव है? हनुमान्‌जी मन में इस प्रकार तर्क कर ही रहे थे कि उसी समय विभीषणजी जाग गए ॥1॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन सठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥2॥

और उन्होंने राम नाम का उच्चारण किया। हनमान्‌जी ने सज्जनों के चिन्ह को पहचाना और हृदय में हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने विचार किया कि इनसे हठ करके भी परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती। अपितु लाभ ही होता है॥2॥

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥3॥

ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमान्‌जी ने उन्हें वचन सुनाए। हनुमान जी के वचन सुनते ही विभीषणजी उठकर उनके पास आए और प्रणाम करके उनकी कुशलता पूछी और कहा कि हे ब्राह्मणदेव! अपने विषय में कृपया पूर्वक कहिए ॥3॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥4॥

क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वयं श्री रामजी ही हैं जो मुझे कृतार्थ करने के लिए दर्शन देने के लिए आए हैं?॥4॥

दोहा :

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥6॥

तब हनुमान्‌जी ने श्री रामचंद्रजी की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गए और श्री रामजी के गुण समूहों का स्मरण करके दोनों के मन प्रेम और आनंद में मग्न हो गए॥6॥

चौपाई :

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥1॥

विभीषणजी ने कहा- हे पवनपुत्र! मेरे विषय में सुनो। मैं यहाँ लंका में वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ रहती है। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ श्री रामचंद्रजी क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे?॥1॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥2॥

मेरा शरीर तामसी शरीर होने से कुछ साधन तो बनता नहीं और न ही मन में श्री रामचंद्रजी के चरणकमलों में प्रेम है, परंतु हे हनुमान्! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्री रामजी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते॥2॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥3॥

जब श्री रघुवीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके, स्वयं आकर दर्शन दिए हैं। हनुमान्‌जी ने कहा- हे विभीषणजी! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वह अपने सेवक पर सदा प्रेम ही किया करते हैं॥3॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥4॥

भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ? जाति से चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ, प्रातःकाल जो हमारा का नाम भी ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले॥4॥

दोहा :

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥7॥

हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्री रामचंद्रजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान् के गुणों का स्मरण करके हनुमान्‌जी के दोनों नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भर आया॥7॥

चौपाई :

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥1॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी श्री रघुनाथजी को भुलाकर सांसारिक विषयों में भटकते फिरते हैं, वह दुःखी क्यों न हों? इस प्रकार श्री रामजी के गुण समूहों को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय अर्थात परम शांति प्राप्त की॥1॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥2॥

फिर विभीषणजी ने, श्री जानकीजी जिस प्रकार का में रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जी ने कहा- हे भाई सुनो, मैं जानकी माता को देखता चाहता हूँ॥2॥

हनुमान्‌जी का अशोक वाटिका में सीताजी को देकर दुःखी होना और रावण का सीताजी को भय दिखलाना

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥3॥

विभीषणजी ने माता के दर्शन की सब युक्तियाँ हनुमान जी को कह सुनाईं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर वहां से जानकी जी के दर्शन के लिए चल पड़े। फिर पुनः मच्छर के समान अति लघु रूप धारण कर वहाँ गए, जहाँ अशोक वन में सीताजी रहती थीं॥3॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥

कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥4॥

सीताजी को देखकर हनुमान्‌जी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। और देखा की सीता जी के बैठे ही बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं अर्थात सीता जी को विश्राम नहीं है, उनके बैठे बैठे ही रात्री बीत जातो है । शरीर दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक एक वेणी बन गई है। वह हृदय में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का जाप करती रहती हैं॥4॥

दोहा :

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥8॥

श्री जानकीजी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं अर्थात सदैव नीचे की ओर देखती रहती है) और उनका मन श्री रामजी के चरण कमलों में लीन है। जानकीजी को ऐसी दीन अवस्था में देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी अत्यंत दुःखी हुए॥8॥

चौपाई :

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥1॥

हनुमान्‌जी वृक्ष के पत्तों में छिप गए और विचार करने लगे कि हे भाई! मैं क्या करूँ जिससे इनका दुःख दूर हो सके? उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिए सज-धजकर रावण वहाँ आया॥1॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥2॥

उस दुष्ट ने सीताजी को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा- हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो! मंदोदरी आदि सब रानियों को-॥2॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥3॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके जानकीजी तिनके की आड़ लेकर अर्थात तिनके का पर्दा करके कहने लगीं-॥3॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥4॥

हे दशमुख! सुन, क्या कभी जुगनू के प्रकाश से कमलिनी खिल सकती है? तू अपने विषय में भी ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट! तुझे श्री रघुवीर के बाण की खबर नहीं है॥4॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥5॥

रे पापी! तू मुझे अकेली पाकर चरी से हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥5॥

दोहा :

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥9॥

अपने को जुगनू के समान और रामचंद्रजी को सूर्य के समान सुनकर और सीताजी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर अत्यंत क्रोधित होकर बोला-॥9॥

चौपाई :

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥1॥

सीता! तूने मेरा अपनाम किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा। नहीं तो जल्दी से मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा॥1॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥2॥

सीताजी ने कहा- हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुंदर और हाथी की सूँड के समान पुष्ट तथा विशाल है, या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या फिर तेरी भयानक तलवार। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥2॥

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥3॥

सीताजी ने पुन: कहा - हे चंद्रहास ! श्री रघुनाथजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले, हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है अर्थात् तेरी धारा ठंडी और तेज है, तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले॥3॥

चौपाई :

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥4॥

सीताजी के यह वचन सुनते ही रावण सीता जी को मारने के लिए दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसको समझाया। तब रावण ने सब दासियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को अनेक प्रकार से भय दिखलाओ॥4॥

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥5॥

यदि महीने भर में इसने मेरा कहा नहीं माना तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥5॥

दोहा :

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥10॥

ऐसा कहकर रावण अपने महल के अन्दर चला गया। यहाँ राक्षसियों के समूह अनेकों बुरे रूप धरकर सीताजी को भय दिखलाने लगी ॥10॥

चौपाई :

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥1॥

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्री रामचंद्रजी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक में निपुण थी। उसने सभी एनी राक्षसियों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा- यदि तुम अपना कल्याण चाहती हो तो सीता जी की सेवा करो ॥1॥

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥2॥

मैंने स्वप्न में देखा कि एक बंदर ने साड़ी लंका जला दी। राक्षसों की सारी सेना मार डाली गई। रावण नग्न होकर गदहे पर सवार है। उसके सिर मुँडा हुआ है, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं॥2॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥3॥

और इस दशा में वह दक्षिण दिशा अर्थात यमपुरी की ओर को जा रहा है और मानो लंका विभीषण ने प्राप्त कर ली है। नगर में श्री रामचंद्रजी की जय जयकार हो रही है। तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा॥3॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥4॥

मैं पुकारकर अर्थात निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि यह स्वप्न कुछ ही दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वह सभी राक्षसियाँ डर गईं और जानकीजी के चरणों पर गिर पड़ीं॥4॥

श्री सीता-त्रिजटा संवाद

दोहा :

जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥11॥

तब वह सभी जहाँ-तहाँ चली गईं। सीताजी मन में सोचने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे अवश्य ही मार डालेगा ॥11॥

चौपाई :

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥1॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं- हे माता! तुम मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी ही कोई ऐसा उपाय करो जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। यह विरह अब मेरे लिए असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता॥1॥

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥2॥

हे माता! तुम काठ लाकर चिता बनाकर सजा कर उसमें आग लगा दो। हे सयानी! तुम मेरी प्रीति को सत्य कर दो। रावण की शूल के समान दुःख देने वाली वाणी कानों से कौन सुने?॥2॥

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।3॥

सीताजी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। उसने कहा- हे सुकुमारी! सुनो रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई॥3॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥4॥

सीताजी मन ही मन सोचने लगीं कि अब मैं क्या करूँ जब विधाता ही विपरीत हो गया है। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता॥4॥

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥5॥

चंद्रमा अग्निमय है, किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुनो। मेरा शोक हर लो और अपना नाम अ-शोक सत्य कर दो ॥5॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥6॥

तुम्हारे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। तुम मुझे अग्नि दो, विरह रोग का अंत मत कर अर्थात् विरह रोग को बढ़ाकर सीमा मत पहुँचाओ। सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी के लिए कल्प के समान बीता॥6॥

श्री सीता-हनुमान् संवाद

सोरठा :

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥12॥

तब हनुमान्‌जी ने हृदय में सोच विचार कर सीताजी के सामने अँगूठी डाल दी, सीता जी ने यह समझकर मानो अशोक ने अंगारा दे दिया, हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया॥12॥

चौपाई :

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥1॥

तब उन्होंने राम-नाम से अंकित अत्यंत सुंदर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं तथा हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं॥1॥

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥2॥

वह सोचने लगीं- श्री रघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी अँगूठी बनाई नहीं जा सकती। सीताजी इस प्रकार मन में अनेक विचार कर रही थीं। उसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोल कर ॥2॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥3॥

श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे, जिनके सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। वह कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जी ने आदि से लेकर अभी तक की सारी कथा कह सुनाई॥3॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥4॥

सीताजी बोलीं जिसने कानों के लिए अमृत रूप यह सुंदर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी उनके पास चले गए। उन्हें देखकर सीताजी मुख फेरकर बैठ गईं? उनके मन में आश्चर्य हुआ॥4॥

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥5॥

हनुमान्‌जी ने कहा- हे माता जानकी मैं श्री रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ, हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्री रामजी ने मुझे आपके लिए यह निशानी दी है॥5॥

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥6॥

सीताजी ने पूछा- यह बताओ कि नर और वानर का संग कैसे हुआ? तब हनुमानजी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कह सुनाई ॥6॥

दोहा :

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥13॥

हनुमान्‌जी के प्रेमयक्त वचन सुनकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया, उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर श्री रघुनाथजी का दास है॥13॥

चौपाई :

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥1॥

इस प्रकार हनुमान जी को भगवान का सेवक जानकर अत्यंत गाढ़ी प्रीति हो गई। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भर आया और शरीर भी अत्यंत पुलकित हो गया

सीताजी ने कहा- हे तात हनुमान्! विरहसागर में डूबती हुई मुझको तुम जहाज के समान प्राप्त हुए हैं ॥1॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥2॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित खर के शत्रु सुखधाम प्रभु का कुशल-मंगल कहो। श्री रघुनाथजी तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?॥2॥

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥3॥

सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक नीति है। श्री रघुनाथजी क्या कभी मुझे भी याद करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगों को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे?॥3॥

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥4॥

उनके मुँह से दुःख के कारण वचन नहीं निकलता, नेत्रों में विरह के आँसुओं का जल कर अत्यंत दुःख से सीता जी बोलीं- हा नाथ! क्या आपने मुझे बिलकुल ही भुला दिया है! सीताजी को इस प्रकार विरह से परम व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले-॥4॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानह जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥5॥

हे माता! उत्तम कृपा के धाम प्रभु श्री राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणजी के सहित शरीर से कुशल हैं, परंतु आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता! अपना मन छोटा करके दुःख न कीजिए। श्री रामचंद्रजी के हृदय में आपसे दुगना प्रेम है॥5॥

दोहा :

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥14॥

हे माता! अब धीरज धरकर श्री रघुनाथजी का संदेश सुनिए। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्गद हो गए। उनके नेत्रों में जल भर आया॥14॥

चौपाई :

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥1॥

हनुमान्‌जी बोले- श्री रामचंद्रजी ने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मेरे लिए अग्नि के समान हो गए हैं, रात्रि कालरात्रि के समान, चंद्रमा सूर्य के समान॥1॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥2॥

और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करने वाले थे, वही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध -शीतल, मंद, और सुगन्धित वायु साँप के श्वास के समान जहरीली और गरम हो गई है॥2॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥3॥

मन का दुःख कह डालने से भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का रहस्य एक मेरा मन ही जानता है॥3॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥4॥

और वह मन सदा तुम्हारे पास ही रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ लो। प्रभु का संदेश सुनते ही जानकीजी प्रेम में मग्न हो गईं। उन्हें शरीर की सुध नहीं रही॥4॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥5॥

हनुमान् जी ने कहा- हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और सेवकों को सुख देने वाले श्री रामजी का स्मरण करो। श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥5॥

दोहा :

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥15॥

राक्षसों के समूह पतंगों के समान और श्री रघुनाथजी के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला हुआ ही समझो॥15॥

चौपाई :

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरुथ कहँ जातुधान की॥1॥

श्री रामचंद्रजी ने यदि आपका समाचार प्राप्त कर लिया होता तो वह कभी बिलंब नहीं करते। हे जानकीजी! रामबाण रूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अंधकार कहाँ रह सकता है?॥1॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥2॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँ से लेकर चला जाऊँ, पर श्री रामचंद्रजी की शपथ है, मुझे प्रभु श्री राम की आज्ञा नहीं है। अतः हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्री रामचंद्रजी वानरों सहित यहाँ आएँगे॥2॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥3॥

और राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे। नारद आदि ऋषि-मुनि तीनों लोकों में उनका यश गाएँगे। तब सीताजी ने कहा- हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान, योद्धा हैं॥3॥

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥4॥

अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह उत्पन्न हो रहा है कि तुम जैसे बंदर राक्षसों को कैसे जीतेंगे!। यह सुनकर हनुमान्‌जी ने अपना स्वरुप किया जो सोने के पर्वत के आकार का अत्यंत विशालकाय था, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान् और वीर था॥4॥

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥5॥

जब उसे देखकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया। तब हनुमान जी ने पुनः लघु रूप धारण कर लिया॥5॥

दोहा :

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥16॥

हनुमान जी बोले - हे माता! सुनो, वानरों में बहुत बल-बुद्धि नहीं होती, परंतु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है अर्थात अत्यंत निर्बल भी महान् बलवान् को मार सकता है॥16॥

चौपाई :

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥1॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बल से परिपूर्ण हनुमान्‌जी की वाणी को सुनकर सीताजी के मन में संतोष हुआ। उन्होंने श्री रामजी के प्रिय जानकर हनुमान्‌जी को आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होगे1॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥ करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥2॥

हे पुत्र! तुम अजर, अमर और गुणों के खजाने होगे। श्री रघुनाथजी तुम पर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गए॥2॥

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥3॥

हनुमान्‌जी ने बार-बार सीताजी के चरणों में सिर झुका कर प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा- हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ है, यह बात प्रसिद्ध है॥3॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥4॥

हे माता! सुनो, सुंदर फल वाले वृक्षों को देखकर मुझे बड़ी भूख लग आई है। सीताजी ने कहा- हे बेटा! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं॥4॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं।
जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥5॥

हनुमान्‌जी ने कहा- हे माता! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दें तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है॥5॥

हनुमान्‌जी द्वारा अशोक वाटिका विध्वंस, अक्षय कुमार वध और मेघनाद का हनुमान्‌जी को नागपाश में बाँधकर सभा में ले जाना

दोहा :

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥17॥

हनुमान्‌जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकीजी ने कहा- जाओ। हे तात! श्री रघुनाथजी के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ॥17॥

चौपाई :

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥1॥

हनुमान जी ने सीताजी को सिर झुका कर प्रणाम जिया और बाग में घुस गए। फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे। उस बाग के अनेकों योद्धा रखवाले थे। उनमें से कुछ को तो हनुमान जी ने मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से कहा ॥1॥

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥2॥

हे नाथ! एक अत्यंत विशाल बंदर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली है । सभी फल खा डाले हैं, वृक्षों को उखाड़ डाला है और रखवालों को मसल-मसलकर जमीन पर फ़ेंक दिया है ॥2॥

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥3॥

यह सुनकर रावण ने अनेकों योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान् जी ने जोर से गर्जना की तथा समस्त राक्षसों का संहार कर डाला, जो कुछ अधमरे थे, वह चिल्लाते हुए भाग गए॥3॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥4॥

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान्‌जी ने एक वृक्ष हाथ में लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि से गर्जना की॥4॥

दोहा :

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥18॥

उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला और कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़कर धूल में मिला दिया। कुछ ने पुन: जाकर रावण से शिकायत की कि हे प्रभु! बंदर अत्यंत ही बलवान् है॥18॥

चौपाई :

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥1॥

पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने अपने बड़े पुत्र बलवान् मेघनाद को भेजा। और उससे कहा कि- हे पुत्र! उस वानर को मारना नहीं उसे केवल बाँध कर ले लाना। मैं उस बंदर को देखना चाहता हूँ की वह यहाँ क्या करने आया है॥1॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥2॥

इंद्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद युद्ध के लिए चल पड़ा। अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर वह अत्यंत क्रोधित हुआ। हनुमान्‌जी ने देखा कि अबकी बार भयानक योद्धा आया है। तब वह कटकटाकर गर्जे और और मेघनाद की ओर दौड़े॥3॥

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दई निज अंगा॥3॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसके प्रहार से लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद के रथ को तोड़कर उसे नीचे पटक दिया। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर से मसलने लगे॥3॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥4॥

उन सबको मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे। लड़ते हुए हनुमान जी और मेघनाद ऐसे मालूम होते थे मानो दो गजराज भिड़ रहे हों। हनुमान्‌जी ने मेघनाद को एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। हनुमान जी के प्रहार से मेघनाद को क्षणभर के लिए मूर्च्छा आ गई॥4॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥5॥

फिर उठकर उसने बहुत माया रची, परंतु वह पवन के पुत्र को जीत नहीं पाया ॥5॥

दोहा :

ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥19॥

और अंत में उसने ब्रह्मास्त्र को अपने घनुष पर रक्खा, तब हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्र को नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी॥19॥

चौपाई :

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥1॥

उसने हनुमान्‌जी पर ब्रह्मबाण से प्रहार किया, जिसके लगते ही हनुमान जी वृक्ष से नीचे गिर पड़े, परंतु गिरते समय भी उन्होंने बहुत सी राक्षसी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गए हैं, तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया॥1॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥2॥

शिवजी कहते हैं कि हे भवानी सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी मनुष्य संसार के समस्त बंधनों को काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बंधन में आ सकता है? किंतु प्रभु के कार्य के लिए हनुमान्‌जी ने स्वयं अपने को बाँध लिया॥2॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥3॥

बंदर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और तमाशा देखने के लिए सभी सभा में आए। हनुमान्‌जी ने जाकर रावण की सभा देखी। उसकी अत्यंत प्रभुता, उसके ऐश्वर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥3॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥4॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रता के साथ भयभीत हुए सब रावण की भृकुटी की ओर देख रहे हैं, उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जी के मन में जरा भी डर उत्पन्न नहीं हुआ। हनुमान जी ऐसे निर्भय होकर खड़े रहे, जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निशंक, निर्भय रहते हैं॥4॥

हनुमान्-रावण संवाद

दोहा :

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिसाद॥20॥

हनुमान्‌जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया॥20॥

चौपाई :

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥1॥

लंकापति रावण ने कहा- रे वानर! तू कौन है? ओर किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मेरा नाम और यश कानों से नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यंत निशंक देख रहा हूँ॥1॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥2॥

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है? हनुमान् जी ने कहा- हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है,॥2॥

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥3॥

जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से सहस्रमुख शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं,॥3॥

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥4॥

जो देवताओं की रक्षा के लिए अनेकों प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया॥4॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥5॥

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला, जो सभी अतुलित बल से संपन्न थे ॥5॥

दोहा :

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तास दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥21॥

जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम चोरी से हर लाए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ॥21॥

चौपाई :

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥1॥

तुम अपनी जिस प्रभुता का बखान कर रहे हो, तुम्हारी उस प्रभुता को मैं भली भाँती जानता हूँ, सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने

यश प्राप्त किया था। हनुमान्‌जी के मार्मिक वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी॥1॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥2॥

हे राक्षसों के स्वामी मुझे भूख लगी थी, इसलिए मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे निशाचरों के मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलने वाले दुष्ट राक्षस जब मुझे मारने लगे॥2॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥3॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया किंतु, मुझे अपने बाँधे लिए जाने में कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो केवल अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ॥3॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥4॥

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्त भयहारी भगवान्‌ को भजो॥4॥

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥5॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है, वह काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकीजी को वापस दे दो॥5॥

दोहा :

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥22॥

खर के शत्रु श्री रघुनाथजी शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे॥22॥

चौपाई :

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥1॥

तुम श्री रामजी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजी का यश निर्मल चंद्रमा के समान है। उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो॥1॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥2॥

राम नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोह को छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुंदरी स्त्री भी कपड़ों के बिना शोभा नहीं पाती॥2॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥3॥

रामविमुख पुरुष की संपत्ति और प्रभुता रहते हुए भी चली जाती है और उसका पाना न पाने के समान है। जिन नदियों के मूल में कोई जलस्रोत नहीं है। अर्थात् जिन्हें केवल बरसात का ही आसरा है, वह वर्षा बीत जाने पर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥3॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥4॥

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुख की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्री रामजी के साथ द्रोह करने वाले को बचा नहीं सकते॥4॥

दोहा :

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥23॥

मोह ही जिनका मूल है ऐसे अज्ञानजनित, अत्यंत पीड़ा देने वाले, तमरूप अभिमान का त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान् श्री रामचंद्रजी का भजन करो॥23॥

चौपाई :

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥1॥

यद्यपि हनुमान्‌जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही, तो भी वह महा अभिमानी रावण व्यंग्य से हँसते हुए बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥1॥

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥2॥

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम! तू मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान्‌जी ने कहा- इससे उलटा ही होगा अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं, यह तेरा मतिभ्रम है, जिसे मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥2॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥3॥

हनुमान्‌जी के वचन सुनकर रावण अत्यंत क्रोधित हुआ और बोला- अरे! इस मूर्ख वानर के प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे॥3॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥4॥

उन्होंने सिर झुका कर, अत्यंत विनीत भाव से रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं। कोई दूसरा दंड दिया जाए। सबने कहा- भाई! यह सलाह उत्तम है॥4॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥5॥

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला- अच्छा तो, बंदर को अंग-भंग करके वापस भेज दो ॥5॥

दोहा :

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥24॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो॥24॥

लंकादहन

चौपाई :

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥1॥

जब बिना पूँछ का यह बंदर अपने स्वामी के पास वापस जाएगा, तब यह मूर्ख अपने उस स्वामी को साथ लेकर आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता को तो देखूँ!॥1॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥2॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मन में मुस्कुराए(और मन ही मन बोले कि मैं जान गया, सरस्वती जी इसे ऐसी बुद्धि देने में सहायक हुई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस पूँछ में आग लगाने की तैयारी करने लगे॥2॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥3॥

पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि सम्पूर्ण नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जी ने ऐसा खेल किया कि उनकी पूँछ लंबी हो गई। नगरवासी लोग जो तमाशा देखने आए थे वह हनुमान्‌जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी हँसी उड़ाते हैं॥3॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥4॥

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। राक्षसों ने हनुमान्‌जी को नगर में घुमा कर, फिर उनकी पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूप में हो गए॥4॥

निबुकि चढ़ेउ कप कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥5॥

और बंधन से निकलकर सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं॥5॥

दोहा :

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥25॥

उस समय भगवान् की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे॥25॥

चौपाई :

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥1॥

हनुमान जी की देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही फुर्तीली है। वह दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। जिससे सम्पूर्ण नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें उठ रही हैं॥1॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥2॥

हाय मेरे बाप! हाय मेरी मां! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा? चारों ओर नगर में यही पुकार सुनाई पड़ रही है। हमने तो कहते हैं कि यह कोई साधारण वानर नहीं है, वानर का रूप धरे कोई देवता है!॥2॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥3॥

साधु के अपमान का यह फल है कि नगर, अनाथ के नगर की तरह जल रहा है। हनुमान्‌जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। केवल एक विभीषण का घर नहीं जलाया॥3॥

ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥4॥

शिवजी कहते हैं- हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को उत्पन्न किया, हनुमान्‌जी उन्हीं के दूत हैं। इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान्‌जी ने उलट-पलटकर, एक ओर से दूसरी ओर तक सारी लंका जला दी और फिर वह समुद्र में कूद पड़े॥

लंका जलाने के बाद हनुमान्‌जी का सीताजी से विदा माँगना और चूड़ामणि पाना

दोहा :

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥26॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर लघु रूप धारण कर हनुमान् जी श्री जानकी जी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥26॥

चौपाई :

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥1॥

हनुमान्‌जी ने कहा- हे माता! मुझे अपनी कोई पहचान दीजिए, जैसे श्री रघुनाथजी ने मुझे दी थी। तब सीताजी ने अपनी चूड़ामणि उतारकर हनुमान जी को दे दी और हनुमान्‌जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया॥1॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ सम संकट भारी॥2॥

जानकीजी ने कहा- हे तात! श्री राम को मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना कि हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं, आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है, तथापि दीनों पर दया करना आपका यश है अतः अपने उस यश को याद करके, हे नाथ! मेरे इस भारी संकट को दूर कीजिए॥2॥

तात सक्रसुत कथा सनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥3॥

हे तात! श्री राम को इंद्रपुत्र जयंत की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप स्मरण कराना। यदि महीने भर में नाथ न आए तो फिर वह मुझे जीवित नहीं पाएँगे॥3॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥4॥

हे हनुमान्! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ! हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। मेरे लिए तो फिर वही दिन और वही रात!॥4॥

दोहा :

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥27॥

हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में सिर रखकर श्री रामजी के पास गमन किया॥27॥

समुद्र के पार वापस आना , सबका लौटना, मधुवन प्रवेश, सुग्रीव मिलन, और श्री राम-हनुमान् संवाद

चौपाई :

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥1॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन की, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वह इस पार आए और उन्होंने वानरों को हर्षध्वनि सुनाई ॥1॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥2॥

हनुमान्‌जी को देखकर सब हर्षित हो गए और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, जिससे वानरों ने समझ लिया कि यह श्री रामचंद्रजी का कार्य कर आए हैं॥2॥

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥3॥

सब वानर हनुमान्‌जी से मिल कर वैसे ही अत्यंत सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नया इतिहास पूछते- कहते हुए श्री रघुनाथजी के पास चल पड़े ॥3॥

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥4॥

जब सब लोग मधुवन के भीतर आए तब उन्होंने अंगद की सम्मति से मधु और फल खाए। जब रखवाललों ने उनको ऐसा करने से रोका, तब वह उन्हें घूँसों से मारने लगे और मार खाते ही सभी रखवाले मधुवन से भाग गए ॥4॥

दोहा :

जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥28॥

उन सबने जाकर सुग्रीव से शिकायत करते हुए कहा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव अत्यंत हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य पूर्ण करके आ गए हैं॥28॥

चौपाई :

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि काई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥1॥

यदि उन्होंने सीताजी का समाचार न पाया होता तो क्या वह मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समस्त समाज के सहित वानर आ गए॥1॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥2॥

सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर रखा। कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले और सभी से इनकी कुशलता पूछी। तब वानरों ने उत्तर दिया- आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। श्री रामजी की कृपा से विशेष कार्य संपन्न हुआ तथा कार्य में विशेष सफलता प्राप्त हुई है॥2॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥3॥

हे नाथ! हनुमान जी ने कार्य पूर्ण किया और सभी वानरों के प्राण बचा लिए। यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जी से पुन: मिले और सब वानरों समेत श्री रघुनाथजी के पास चल पड़े ॥3॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥4॥

श्री रामजी ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े॥4॥

दोहा :

प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज॥
पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥29॥

दया की राशि श्री रघुनाथजी सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और उनकी कुशलता पूछी। वानरों ने कहा- हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब कुशल है॥29॥

चौपाई :

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥1॥

जाम्बवंत ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए। हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं, उका सदा कल्याण होता है और वह निरंतर कुशलता से रहता है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं॥1॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥2॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणों का समुद्र बन जाता है। उसी का सुंदर यश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥2॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥3॥

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान् ने जो कर्म किया, उसका सहस्त्र मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवंत ने हनुमान्‌जी के सुंदर चरित्र को श्री रघुनाथजी को सुनाया ॥3॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥4॥

वह चरित्र सुनने पर कृपानिधि श्री रामचंदजी के मन को बहुत ही अच्छे लगा। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जी को अपने हृदय से लगा लिया और कहा- हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?॥4॥

दोहा :

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥30॥

हनुमान्‌जी ने कहा- आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही दरवाजा है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से?॥30॥

चौपाई :

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥1॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि पहचान के रूप में दी। श्री रघुनाथजी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। हनुमान्‌जी ने पुनः कहा- हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकीजी ने मुझसे कुछ वचन कहे हैं -॥1॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥2॥

जानकी जी ने कहा है कि छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना और कहना कि आप दीनबंधु हैं, शरणागत के दुःखों को हरने वाले हैं और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी आपने मुझे किस अपराध से त्याग दिया है ?॥2॥

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥3॥

हाँ एक दोष मैं अपना अवश्य मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं निकले, किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं॥3॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥4॥

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है, इस प्रकार अग्नि और पवन का संयोग होने से यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परंतु नेत्र अपने हित के लिए प्रभु का स्वरूप देखकर सुखी होने के लिए जल बरसाते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जल नहीं पातो ॥4॥

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥5॥

सीताजी अन्यंत विशाल विपत्ति में हैं। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है क्योंकि कहने से आपको अत्यंत दुःख पहुंचेगा ॥5॥

दोहा :

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥31॥

हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीताजी को वापस ले आइए॥31॥

चौपाई :

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥1॥

सीताजी का दुःख सुनकर सुख के धाम प्रभु श्री राम के कमल रुपी नेत्रों में जल भर आया और वह बोले- मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति, मेरा ही आश्रय है, क्या उसे स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?॥1॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥2॥

हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभु! विपत्ति तो तभी है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है? आप शत्रु को जीतकर जानकीजी को ले आयेंगे ॥2॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥3॥

श्री राम कहने लगे - हे हनुमान्‌! सुनो, तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकारतो क्या करूं, मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता॥3॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥4॥

हे पुत्र! सुनो, मैंने मन में विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जी को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है॥4॥

दोहा :

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥32॥

प्रभु के वचन सुनकर और उनके प्रसन्न मुख तथा पुलकित अंगों को देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गए और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन्‌! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े॥32॥

चौपाई :

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥1॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं, परंतु प्रेम में डूबे हुए हनुमान्‌जी श्री राम के चरणों से उठन ही नहीं चाहते। प्रभु का करकमल हनुमान्‌जी के सिर पर है। उस स्थिति का स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गए॥1॥

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाई प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥2॥

फिर मन को सावधान करके शंकरजी अत्यंत सुंदर कथा कहने लगे- हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यंत निकट बैठा लिया॥2॥

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥3॥

हे हनुमान्‌! बताओ तो, रावण के द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना और वह अभिमानरहित वचन बोले- ॥3॥

साखामग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥4॥

बंदर का बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोने का नगर जलाया और राक्षसगण को मारकर अशोक वन को उजाड़ डाला,॥4॥

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥5॥

यह सब तो हे श्री रघुनाथजी! आप ही का प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता बड़ाई कुछ भी नहीं है॥5॥

दोहा :

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥33॥

हे प्रभु! जिस पर आप प्रसन्न हों, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से रूई भी बड़वानल को निश्चय ही जला सकती है अर्थात् असंभव भी संभव हो सकता है॥3॥

चौपाई :

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥1॥

हे नाथ! मुझे अत्यंत सुख देने वाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके प्रदान कीजिए। हनुमान्‌जी की अत्यंत सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु श्री रामचंद्रजी ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा॥1॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥2॥

हे उमा! जिसने श्री रामजी का स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवक का संवाद जिसके हृदय में आ गया, वही श्री रघुनाथजी के चरणों की भक्ति पा गया॥2॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥3॥

प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे- कृपालु आनंदकंद श्री रामजी की जय हो जय हो, जय हो! तब श्री रघुनाथजी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा- चलने की तैयारी करो॥3॥

अब बिलंबु केह कारन कीजे। तुरंत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥4॥

अब विलंब किस कारण किया जाए। वानरों को तुरंत आज्ञा दो। भगवान् की यह लीला देखकर, बहुत से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने-अपने लोक को चले॥4॥

श्री रामजी का वानरों की सेना के साथ चलकर समुद्र तट पर पहुँचना

दोहा :

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥34॥

वानरराज सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, जिससे वानर सेनापतियों के समूह एकत्रित हो गए। वानर-भालुओं के झुंड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥34॥

चौपाई :

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥1॥

वह प्रभु के चरण कमलों में सिर रखते हैं। महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं। श्री रामजी ने वानरों की सारी सेना देखी। तब कमल नेत्रों से कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली॥1॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥2॥

राम कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गए। तब श्री रामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान किया। उस समय अनेक सुंदर और शुभ शकुन हुए॥2॥

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥3॥

जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है, उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है। प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने भी जान लिया। उनके बाएँ अंग फड़क-फड़ककर मानो कहने लगे कि श्री रामचन्द्र जी आ रहे हैं)॥3॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥4॥

जानकीजी को जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं॥4॥

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥5॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वह इच्छानुसार चलने वाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षों को धारण किए कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। उनके चलने और गर्जने से दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिंघाड़ने लगे॥5॥

छंद :

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥1॥

दिशाओं के हाथी चिंघाडने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत काँपने लगे और समुद्र खलबला उठे। गंधर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सभी मन में हर्षित हुए' कि अब हमारे दुःख टल गए। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबल प्रताप कोसलनाथ श्री रामचंद्रजी की जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहों को गा रहे हैं॥1॥

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥2॥

परम श्रेष्ठ एवं महान् सर्पराज शेषजी भी सेना के बोझ को सह नहीं पाते, वह बार-बार मोहित हो जाते हैं और बार बार कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं। ऐसा करते अर्थात् बार-बार दाँतों को गड़ाकर कच्छप की पीठ पर लकीर सी खींचते हुए, वह ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो श्री रामचंद्रजी की सुंदर प्रस्थान यात्रा को परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेषजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों॥2॥

दोहा :

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥35॥

इस प्रकार कृपानिधान श्री रामजी समुद्र तट पर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥35॥

मंदोदरी-रावण संवाद

चौपाई :

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा।1॥

जब से हनुमान्‌जी लंका को जलाकर गए, तब से लंका में समस्त राक्षस भयभीत रहने लगे। सभी अपने-अपने घरों में विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा का कोई उपाय नहीं है॥1॥

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥2॥

जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन सी भलाई है? दूतों से नगरवासियों के वचन सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई॥2॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥3॥

वह एकांत में हाथ जोड़कर अपने पति रावण के चरणों पकड़ कर और नीतिरस में डूबी हुई वाणी बोली- हे प्रियतम! श्री हरि से विरोध छोड़ दीजिए। मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए॥3॥

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥4॥

जिनके दूत की करनी का विचार करते ही राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए॥4॥

दोहा :

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥5॥

सीता आपके कुल रूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आई है। हे नाथ। सुनिए, सीता को दिए बिना शम्भु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता॥5॥

दोहा :

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥36॥

श्री रामजी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेंढक के समान। जब तक वह इन्हें ग्रस नहीं लेते तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए॥36॥

चौपाई :

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥1॥

मूर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा और बोला स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मंगल में भी भय करती हो। तुम्हारा मन बहुत ही कमजोर है॥1॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥2॥

यदि वानरों की सेना आएगी भी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है॥2॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
फमंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥3॥

रावण ऐसा कहकर हँसा और मंदोदरी को हृदय से लगा लिया और अधिक स्नेह दर्शाकर वह सभा में चला गया। मंदोदरी हृदय में चिंता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए॥3॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥4॥

ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है, उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए अब क्या करना चाहिए? तब वह सब हँसे और बोले कि मस्त रहिए इसमें सलाह की कौन सी बात है?॥4॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥5॥

आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?॥5॥

रावण को विभीषण का समझाना और विभीषण का अपमान

दोहा :

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥37॥

मंत्री, वैद्य और गुरु- या तीनों यदि अप्रसन्नता के भय से अथवा लाभ की आशा से हित की बात न कहकर प्रिय बोलते हैं, तो क्रमशः राज्य, शरीर और धर्म- इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है॥37॥

चौपाई :

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥1॥

रावण के लिए भी वही संयोग आ बना है। मंत्री उसके सामने केवल स्तुति करते हैं। इसी समय अवसर जानकर विभीषणजी आए। उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर रक्खा ॥1॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥2॥

फिर से सिर रखकर अपने आसन पर बैठ गए और आज्ञा पाकर इस प्रकार बोले - हे कृपाल जब आपने मुझसे मेरी राय पूछी ही है, तो हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ- ॥2॥

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥3॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और अनेक प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्री के ललाट को चौथ के चंद्रमा की तरह त्याग दे अर्थात् जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्री का मुख ही न देखे॥3॥

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥4॥

चाहे चौदहों भुवनों का एक ही स्वामी क्यों न हो, वह भी जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता, नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥4॥

दोहा :

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥38॥

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ- यह सभी नरक के रास्ते हैं, इन सबको छोड़कर श्री रामचंद्रजी को भजिए, जिनका भजन संतजन करते हैं ॥38॥

चौपाई :

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥1॥

हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं। वह समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं। वह संपूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार भगवान् हैं, वह निरामय अर्थात विकाररहित, अजन्मे, व्यापक, अजेय, अनादि और अनंत ब्रह्म हैं॥1॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥2॥

उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिए, वह सेवकों को आनंद प्रदान करने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं॥2॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥3॥

वैर त्यागकर उन्हें मस्तकझुका जार प्रणाम करिए। वे श्री रघुनाथजी शरणागत के दुःख का नाश करने वाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु सर्वेश्वर को जानकीजी दे दीजिए और बिना ही कारण स्नेह करने वाले श्री रामजी को भजिए॥3॥

दोहा :

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥4॥

जिसे संपूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है, शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है, वही प्रभु मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लीजिए॥4॥

दोहा :

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥39क॥

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को त्यागकर आप कौसलपति श्री रामजी का भजन कीजिए॥39 (क)॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥39ख॥

मुनि पुलस्त्यजी ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुंदर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात आप से कह दी॥39 (ख)॥

चौपाई :

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥1॥

माल्यवान् नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मंत्री था। उसने विभीषण के वचन सुनकर बहुत सुख माना और कहा- हे तात! आपके छोटे भाई नीति विभूषण अर्थात नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिए॥1॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥2॥

रावण ने कहा- यह दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो! तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे-॥2॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥3॥

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि और कुबुद्धि सबके हृदय में रहती है, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ प्रदान करने वाली सुख की स्थिति रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है॥3॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥4॥

आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी है। इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं। जो राक्षस कुल के लिए कालरात्रि के समान हैं, उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है॥4॥

दोहा :

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हारा॥40॥

हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ । कि आप मेरा दुलार रखिए अर्थात मुझ बालक के आग्रह को स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिए तथा सीताजी को श्री रामजी को दे दीजिए, इससे आपका अहित नहीं होगा ॥40॥

चौपाई :

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहिं निकट मृत्यु अब आई॥1॥

विभीषण ने पंडितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत वाणी से नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गई है!॥1॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥2॥

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा कारण अर्थात् मेरे ही अन्न से पल रहा है, पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट! बता न, जगत् में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो?॥2॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥3॥

मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर। मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता। ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात मारी, परंतु छोटे भाई विभीषण ने लात खाने पर भी बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥3॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥4॥

शिवजी कहते हैं- हे उमा! संत की यही महिमा है कि वह बुराई करने पर भी बुराई करने वाले की भलाई ही करते हैं। विभीषणजी ने कहा - आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा तो अच्छा ही किया, परंतु हे नाथ! आपका भला श्री रामजी का भजन करने में ही है॥4॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥5॥

इतना कहकर विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में चले गए और सबको सुनाकर वह कहने लगे-॥5॥

विभीषण का भगवान् श्री रामजी की शरण के लिए प्रस्थान और शरण प्राप्ति

दोहा :

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥41॥

श्री रामजी सत्य संकल्प एवं सर्वसमर्थ प्रभु हैं और हे रावण तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष मत देना॥41॥

चौपाई :

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयू हीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥1॥

ऐसा कहकर विभीषणजी जैसे ही श्री राम की शरण में जाने के लिए चले,वैसे ही समस्त राक्षस आयुहीन हो गए। शिवजी कहते हैं- हे भवानी! साधु का अपमान तुरंत ही संपूर्ण कल्याण का नाश कर देता है॥1॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥2॥

रावण ने जिस क्षण विभीषण का त्याग किया, उसी क्षण वह अभागा ऐश्वर्य से हीन हो गया। विभीषण जी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥2॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषनारी। दंडक कानन पावनकारी॥3॥

वह सोचते जाते थे- मैं जाकर भगवान् के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहल्या तर गईं और जो दंडकवन को पवित्र करने वाले हैं॥3॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥4॥

जिनके चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर उसे पकड़ने को दौड़े थे और जिनके चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा॥4॥

दोहा :

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥42॥

जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी ने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा॥42॥

चौपाई :

ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंदु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥1॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वह शीघ्र ही समुद्र के इस पार, जहाँ श्री रामचंद्रजी की सेना थी आ गए। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने समझा कि शत्रु का कोई खास दूत आया है॥1॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥2॥

उन्हें पहरे पर ठहराकर वह सुग्रीव के पास आए और उनको समस्त समाचार कह सुनाया। सुग्रीव ने श्री रामजी के पास जाकर कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, रावण का भाई आप से मिलने आया है॥2॥

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥3॥

प्रभु श्री रामजी ने कहा- हे मित्र! तुम क्या समझते हो, तुम्हारी क्या राय है? वानरराज सुग्रीव ने कहा- हे महाराज! सुनिए, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला न जाने किस कारण आया है॥3॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥4॥

मुझे तो लगता है कि यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध कर रखा जाए। श्री रामजी ने कहा- हे मित्र! तुमने नीति पर तो अच्छा विचार किया है, परंतु मेरा प्रण तो शरणागत के भय को हर लेना है!॥4॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥5॥

प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए और मन ही मन कहने लगे कि भगवान् कैसे शरणागतवत्सल हैं ॥5॥

दोहा :

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥43॥

श्री रामजी पुन: बोले- जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है क्योंकि ऐसा करने पर पाप लगता है॥43॥

चौपाई :

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥1॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव जैसे ही मेरे सम्मुख होता है, वैसे ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं॥1॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥2॥

पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह रावण का भाई निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?॥2॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥3॥

जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावण ने उसे भेद लेने के लिए भेजा है, तब भी हे सुग्रीव! अपने को कुछ भी भय अथवा हानि नहीं है॥3॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥4॥

क्योंकि हे सखे! जगत में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण आया है तो मैं तो उसे प्राणों की तरह रखूँगा॥4॥

दोहा :

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥44॥

कृपा के धाम श्री रामजी ने हँसकर कहा- दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान् सहित सुग्रीवजी 'कपालु श्री रामजी की जय हो' कहते हुए चल पड़े॥4॥

चौपाई :

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥1॥

विभीषणजी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथजी विराजमान थे। नेत्रों को आनंद का दान देने वाले अत्यंत सुखद दोनों भाइयों को विभीषणजी ने दूर ही से देखा॥1॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥2॥

फिर शोभा के धाम श्री रामजी को देखकर वह पलक मारना रोककर स्तब्ध होकर एकटक देखते ही रह गए। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करने वाला साँवला शरीर है॥2॥

सघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥3॥

सिंह के समान कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल अत्यंत शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है। भगवान् के स्वरूप को देखकर विभीषणजी के नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भर आया और उनका शरीर अत्यंत पुलकित हो गया। फिर मन में धीरज रख कर उन्होंने कोमल वचन कहे॥3॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥4॥

हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है॥4॥

दोहा :

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥45॥

मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु जन्म-मरण के भय का नाश करने वाले हैं। हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥45॥

चौपाई :

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥1॥

प्रभु ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत् करते देखा तो वह अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठ खड़े हुए। विभीषणजी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को अत्यंत भाए। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया॥1॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय हारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥2॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्री रामजी भक्तों के भय को हरने वाले वचन बोले- हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है॥2॥

खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥3॥

दिन-रात दुष्टों की मंडली में बसते हो। ऐसी दशा में हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति, आचार-व्यवहार को जानता हूँ। तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥3॥

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥4॥

हे तात! नरक में रहना वरन् अच्छा है, परंतु विधाता दुष्ट का संग कभी न दे। विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है॥4॥

दोहा :

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥46॥

तब तक जीव की कुशल नहीं है और न स्वप्न में भी उसके मन को शांति है, जब तक वह शोक के घर काम विषय-कामना को छोड़कर श्री रामजी को नहीं भजता॥46॥

चौपाई :

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥1॥

लोभ, मोह, मत्सर, मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं, जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए श्री रघुनाथजी हृदय में नहीं बसते॥1॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥2॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह ममता रूपी रात्रि तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता॥2॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥3॥

हे श्री रामजी! आपके चरणारविन्द के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ, मेरे भारी भय मिट गए। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल अर्थात आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप नहीं व्यापते॥3॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥4॥

मैं अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता, उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया॥4॥

दोहा :

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥47॥

हे कृपा और सुख के पुंज श्री रामजी! मेरा अत्यंत असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा॥47॥

चौपाई :

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥1॥

श्री रामजी ने कहा- हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य संपूर्ण जड़-चेतन जगत् का भी द्रोही हो और यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण में आ जाए,॥1॥

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥2॥

और मद, मोह तथा अनेकों प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार॥2॥

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥3॥

इन सबके ममत्व रूपी धागों को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बनाकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता हैं अर्थात सारे सांसारिक संबंधों का केंद्र मुझे बना लेता है। जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है॥3॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥4॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदय में वैसे ही बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसता है। तुम जैसे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी की कृतज्ञतावश देह धारण नहीं करता॥4॥

दोहा :

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥48॥

जो सगुण भगवान् के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं, नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वह मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं॥48॥

चौपाई :

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥1॥

हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो। श्री रामजी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे- कृपा के समूह श्री रामचन्द्र जी महाराज की जय हो॥1॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥2॥

प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वह बार-बार श्री रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं, उनका श्री राम के प्रति इतना अपार प्रेम है, कि हृदय में समाता नहीं है॥2॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥3॥

विभीषणजी ने कहा- हे देव! हे चराचर जगत् के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक! हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले! सुनिए, मेरे हृदय में पहले जो कुछ वासना थी। वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई॥3॥

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥4॥

अब तो हे कृपालु! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए। 'एवमस्तु' कहकर रणधीर प्रभु श्री रामजी ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा॥4॥

जदपि सखा तव इच्छा नहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥5॥

और कहा- हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है, वह निष्फल नहीं जाता। ऐसा कहकर श्री रामजी ने विभीषण जी का राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई॥5॥

दोहा :

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥49क॥

श्री रामजी ने रावण की क्रोध रूपी अग्नि में, जो विभीषण की श्वास रूपी पवन से प्रचंड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखंड राज्य प्रदान कर दिया॥49 (क)॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥49ख॥

शिवजी ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति श्री रघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी॥49 (ख)॥

चौपाई :

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥1॥

ऐसे परम कृपालु प्रभु श्री राम को छोड़कर जो मनुष्य दूसरों का भजन करते हैं, वह बिना सींग-पूँछ के पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषण को श्री रामजी ने अपना लिया। प्रभु का यह स्वभाव वानरकुल के मन को बहुत भाया॥1॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥2॥

फिर सब कुछ जानने वाले, सबके हृदय में बसने वाले, सर्वरूप, सबसे रहित, उदासीन, कारण से मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करने वाले श्री रामजी नीति की रक्षा करने वाले वचन बोले-॥2॥

समुद्र पार करने के लिए विचार, रावणदूत शुक का आना और लक्ष्मणजी के पत्र को लेकर लौटना

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँति॥3॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाए? अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यंत अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है॥3॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥4॥

विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रों को सोखने की शक्ति रखता है, तथापि नीति ऐसी कही गई है कि पहले जाकर समुद्र से प्रार्थना की जाए॥4॥

दोहा :

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि॥
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥50॥

हे प्रभु! समुद्र आपके कुल में बड़े हैं, वह अवश्य विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जाएगी॥50॥

चौपाई :

सखा कही तुम्ह नीति उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥1॥

श्री रामजी ने कहा- हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाए, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजी के मन को अच्छी नहीं लगी। श्री रामजी के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥1॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥2॥

लक्ष्मणजी ने कहा- हे नाथ! दैव का क्या भरोसा! हृदय में क्रोध धारण कीजिए और समुद्र को सुखा डालिए। यह दैव तो कायर के मन का केवल एक आधार है आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥2॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥3॥

यह सुनकर श्री रघुवीर हँसकर बोले- ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर प्रभु श्री रघुनाथजी समुद्र के समीप गए॥3॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥4॥

उन्होंने पहले समुद्र को सिर झुकाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए। इधर जैसे ही विभीषणजी प्रभु के पास आए थे, वैसे ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे॥51॥

दोहा :

सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥51॥

कपट से वानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वह अपने हृदय में प्रभु के गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे ॥51॥

चौपाई :

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥1॥

फिर वे प्रकट रूप में भी अत्यंत प्रेम के साथ श्री रामजी के स्वभाव की सराहना करने लगे। अत्यधिक प्रेम के कारण वह अपना कपट वेश भी भूल गए। सब वानरों ने जाना कि यह शत्रु के दूत हैं और वह उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए॥1॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥2॥

सुग्रीव ने कहा- सब वानरों! सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया॥2॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥3॥

वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा। तब दूतों ने चिल्ला कर कहा- जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कौसलाधीश श्री रामजी की सौगंध है॥ 3॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥4॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। उन्हें उन दूतो पर अत्यंत दया आई और उन्होंने हँसकर राक्षसों को तुरंत ही छुड़ा दिया। और राक्षसों से कहा- रावण के हाथ में यह चिट्ठी दे देना और कहना- हे कुलघातक! लक्ष्मण के सन्देश को पढो॥4॥

दोहा :

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥52॥

फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा कृपा से भरा हुआ संदेश कहना कि सीताजी को देकर श्री रामजी से मिलो, अन्यथा तुम्हारा काल आ ही गया समझो॥52॥

चौपाई :

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥1॥

लक्ष्मणजी के चरणों में मस्तक झुकाकर, श्री रामजी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिए। श्री रामजी का यश कहते हुए वह लंका में आए और उन्होंने रावण के चरणों में सिर झुकाया ॥1॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुन कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥2॥

दशमुख रावण ने उनसे हँसते हुए पूछा - अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यंत निकट आ गई है॥2॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥3॥

मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया। अभागा अब जौ का कीड़ा बनेगा अर्थात जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा, फिर भालु और वानरों की सेना का हाल सुना, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है॥3॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥4॥

और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्त वाला बेचारा समुद्र बन गया है अर्थात् उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है॥4॥

दूत का रावण को समझाना और लक्ष्मणजी का पत्र देना

दोहा :

की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥53॥

उनसे तेरी भेंट हुई या वह कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए? शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित हो रहा है॥53॥

चौपाई :

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥1॥

दूत ने कहा- हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिए। जब आपका छोटा भाई श्री रामजी से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्री रामजी ने उसको राजतिलक कर दिया॥1॥

दोहा :

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥2॥

हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए, यहाँ तक कि वह हमारे नाक-कान काटने लगे। श्री रामजी की शपथ दिलाने पर उन्होंने हमको छोड़ा॥2॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥3॥

हे नाथ! आपने श्री रामजी की सेना के विषय में पूछा, तो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगों के भालु और वानरों की सेना है, जो भयंकर मुख वाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं॥3॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥4॥

जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा, उसका बल तो समस्त वानरों में थोड़ा सा है। असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा उनकी सेना में हैं। उनमें असंख्य हाथियों का बल है और वह अत्यंत विशाल हैं॥4॥

दोहा :

द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥54॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् यह अभी अनंत बल की राशि हैं॥54॥

चौपाई :

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥1॥

या सभी वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे वानर एक-दो नहीं करोड़ों हैं, ऐसे इतने सारों को गिन ही कौन सकता है। श्री रामजी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है। वह तीनों लोकों को तृण के समान तुच्छ समझते हैं॥1॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥2॥

हे दशग्रीव! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रण में न जीत सके॥2॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥

सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥3॥

सब के सब अत्यंत क्रोध से हाथ मलते हैं। पर श्री रघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोख लेंगे। अन्यथा बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पाट देंगे॥3॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥4॥

और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे। सभी वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सभी सहज ही निडर हैं और इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं॥4॥

दोहा :

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥55॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं और फिर उनके सिर पर सर्वेश्वर श्री रामजी हैं। हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं॥55॥

चौपाई :

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥1॥

श्री रामचंद्रजी के सामर्थ्य, बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वह एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं, परंतु नीति निपुण श्री रामजी ने नीति की रक्षा के लिए आपके भाई से उपाय पूछा॥1॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥2॥

आपके भाई के वचन सुनकर श्री रामजी समुद्र से प्रार्थना कर रास्ता माँग रहे हैं, उनके मन में कृपा भी है इसलिए वह समुद्र को सुखा नहीं रहे। दूत के ऐसे वचन सुनते ही रावण खूब हँसा और बोला- जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है!॥2॥

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥3॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण मानकर उन्होंने समुद्र से बालहठ ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है? बस, मैंने शत्रु राम के बल और बुद्धि की गहराई नाप ली ॥3॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥4॥

जिसका विभीषण जैसा डरपोक मंत्री हो , उसे जगत में विजय और विभूति और ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? दुष्ट रावण के वचन सुन कर दूत शुक का क्रोध बढ़ गया! उस ने मौका समझ कर पत्रिका निकाली॥4॥

रामानुज दीन्हीं यह पाती नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥5॥

और कहा-श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे पढ़कर छाती ठंडी कीजिए। रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया और मंत्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे पढवाने लगा॥5॥

दोहा :

बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥56क॥

पत्रिका में लिखा था- अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को बहलाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट मत कर। श्री रामजी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा॥56 (क)॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥56ख॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट! श्री रामजी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतंगे की भांति जलने के लिए तैयार हो जा॥56 (ख)॥

चौपाई :

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥1॥

पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परंतु ऊपर से मुस्कुराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा- जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी लक्ष्मण वाग्विलास करता है अर्थात बड़ी बड़ी डींग हाँकता है॥1॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥2॥

शुक (दूत) ने कहा- हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर इस पत्र में लिखी समस्त बातों को सत्य समझिए। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए। हे नाथ! श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए॥2॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥3॥

यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यंत ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वह हृदय में नहीं रखेंगे॥3॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥4॥

जानकीजी श्री रघुनाथजी को वापस दे दीजिए। हे प्रभु! इतना कहना मेरा मान लीजिए। जब उस दूत ने जानकीजी को देने के लिए कहा, तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी॥4॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥5॥

वह भी विभीषण की भाँति चरणों में सिर झुका कर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्री रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और श्री रामजी की कृपा से अपनी गति प्राप्त की॥5॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥6॥

शिवजी कहते हैं- हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था परन्तु अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार-बार श्री रामजी के चरणों की वंदना करके उसने पुनः मुनि रूप प्रपात किया तथा अपने आश्रम को चला गया॥6॥

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध और समुद्र की विनती, श्री राम गुणगान की महिमा

दोहा :

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥57॥

इधर तीन दिन बीत गए, किंतु जड़ समुद्र ने श्री राम की प्रार्थना तथा विनय पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। तब श्री रामजी क्रोधपूर्वक बोले- बिना भय के प्रीति नहीं होती!॥57॥

चौपाई :

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥1॥

हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाण से समुद्र को सुखा डालूँ। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति अर्थात उदारता का उपदेश,॥1॥

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥2॥

ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शांति की बात और कामी से भगवान् की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है॥2॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥3॥

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। यह मत लक्ष्मणजी के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक अग्नि बाण को धनुष पर रखा, जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला भड़क उठी॥3॥

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥4॥

मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना, तब सोने के थाल में अनेक मणियों को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया॥4॥

दोहा :

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥58॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं- हे गरुड़जी! सुनिए, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है ॥58॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥1॥

समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा- हे नाथ! मेरे सब अवगुण क्षमा कर कीजिए। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी- इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है॥1॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥2॥

आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है, सब ग्रंथों ने यही गाया है। जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है॥2॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥3॥

प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा दी, किंतु मर्यादा अर्थात जीवों का स्वभाव भी आपका ही बनाया हुआ है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री- यह सभी शिक्षा प्रदान करने के अधिकारी हैं॥3॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥4॥

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है। तथापि प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे वह कहें, मैं तुरंत वही करूँगा ॥4॥

दोहा :

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥59॥

समुद्र के अत्यंत विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री रामजी ने मुस्कुराकर कहा- हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाए, वह उपाय बताइए ॥59॥

चौपाई :

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥1॥

समुद्र ने कहा- हे नाथ! आपकी सेवा में नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे॥1॥

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥2॥

मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने सामर्थ्य के अनुसार जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बँधाइए, जिससे तीनों लोकों में आपका सुंदर यश गाया जाए॥2॥

एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥

सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥3॥

इस बाण से मेरे उत्तर तट पर रहने वाले पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का वध कीजिए। कृपालु और रणधीर श्री रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया अर्थात् बाण से उन दुष्टों का वध कर दिया॥3॥

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥4॥

श्री रामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया। फिर चरणों की वंदना करके समुद्र चला गया॥4॥

छंद :

निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मल हर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्री रघुनाथजी को समुद्र का यह मत अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों को हरने वाला है, इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। श्री रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम, संदेह का नाश करने वाले और विषाद का दमन करने वाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसार का सब आशा-भरोसा त्यागकर निरंतर इन्हें गा और सुन।

दोहा :

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥60॥

श्री रघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज अर्थात अन्य साधन के ही भवसागर को पार कर जाएँगे॥60॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पंचमः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुंदरकाण्ड समाप्त)

सियावर राम चन्द्र की जय
सीता माता की जय
लक्ष्मण जी की जय
भरत- शत्रुघ्न जी की जय
कौशल नरेश दशरथ जी की जय
माता कौशल्या – सुमित्रा जी की जय
पवनसुत हनुमान जी की जय
सुग्रीव जी महाराज की जय
विभीषण जी की जय
नल और नील की जय
वानर सेना की जय
अयोध्या धाम की जय
रामेश्वर धाम की जय
गंगाजी की जय
गौ माता जी जय
रामायण जी की जय
सब संतन की जय
सब भक्तन की जय
श्री राम नाम की जय

श्री राम स्तुति

श्री राम चंद्र कृपालु भजमन हरण भाव भय दारुणम्।

नवकंज लोचन कंज मुखकर, कंज पद कन्जारुणम्॥

कंदर्प अगणित अमित छवी नव नील नीरज सुन्दरम्।

पट्पीत मानहु तडित रूचि शुचि नौमी जनक सुतावरम्॥

भजु दीन बंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनम्।

रघुनंद आनंद कंद कौशल चंद दशरथ नन्दनम्॥

सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारू अंग विभूषणं।

आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर-धूषणं॥

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम्।

मम ह्रदय कुंज निवास कुरु कामादी खल दल गंजनम्॥

छंद:

मनु जाहिं राचेऊ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सावरों।

करुना निधान सुजान सिलू सनेहू जानत रावरो॥

एही भांती गौरी असीस सुनी सिय सहित हिय हरषी अली।

तुलसी भवानी पूजि पूनी पूनी मुदित मन मंदिर चली॥

सोरठा:

जानि गौरी अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।

मंजुल मंगल मूल वाम अंग फरकन लगे॥

हनुमान जी की आरती

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
जाके बल से गिरिवर कांपे। रोग दोष जाके निकट न झांके॥

अंजनि पुत्र महाबलदायी। संतान के प्रभु सदा सहाई।
दे बीरा रघुनाथ पठाए। लंका जारी सिया सुध लाए॥

लंका सो कोट समुद्र सी खाई। जात पवनसुत बार न लाई।
लंका जारी असुर संहारे। सियारामजी के काज संवारे॥

लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे। आणि संजीवन प्राण उबारे।
पैठी पताल तोरि जमकारे। अहिरावण की भुजा उखाड़े॥

बाएं भुजा असुर दल मारे। दाहिने भुजा संतजन तारे।
सुर-नर-मुनि जन आरती उतारे। जै जै जै हनुमान उचारे॥

कंचन थार कपूर लौ छाई। आरती करत अंजना माई।
लंकविध्वंस कीन्ह रघुराई। तुलसीदास प्रभु कीरति गाई॥

जो हनुमानजी की आरती गावै। बसी बैकुंठ परमपद पावै।
आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की॥

भजन सेवा

सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ।
जाहि विधि राखे, राम ताहि विधि रहिये॥

मुख में हो राम नाम, राम सेवा हाथ में।
तू अकेला नाहिं प्यारे, राम तेरे साथ में ।
विधि का विधान, जान हानि लाभ सहिये॥

किया अभिमान, तो फिर मान नहीं पायेगा ।
होगा प्यारे वही, जो श्री रामजी को भायेगा।
फल आशा त्याग, शुभ कर्म करते रहिये॥

ज़िन्दगी की डोर सौंप, हाथ दीनानाथ के।
महलों मे राखे, चाहे झोंपड़ी मे वास दे।
धन्यवाद, निर्विवाद, राम राम कहिये॥

आशा एक रामजी से, दूजी आशा छोड़ ।
नाता एक रामजी से, दूजे नाते तोड़ दे।
साधु संग, राम रंग, अंग अंग रंगिये।
काम रस त्याग, प्यारे राम रस पीजिए॥

क्षमा- प्रार्थना

आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

शांति प्रार्थना

करपूर गौरम करूणावतारम संसार सारम भुजगेन्द्र हारम ।
सदा वसंतम हृदयारविंदे भवम भवानी सहितं नमामि ॥

मंगलम भगवान् विष्णु मंगलम गरुड़ध्वजः ।
मंगलम पुन्डरी काक्षो मंगलायतनो हरि ॥

सर्व मंगल मांग्लयै शिवे सर्वार्थ साधिके ।
शरण्ये त्रयम्बके गौरी नारायणी नमोस्तुते ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधू च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात।
करोमि यध्त सकलं परस्मैनारायणायेति समर्पयामि ॥

शान्ताकारम् भुजगशयनम् पद्मनाभम् सुरेशम्
विश्वाधारम् गगनसदृशम् मेघवर्णम् शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तम् कमलनयनम् योगिभिर्ध्यानगम्यम्
वन्दे विष्णुम् भवभयहरम् सर्वलोकैकनाथम्॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।
ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः।
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः।
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति:
पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति:।
वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्ति:
सर्वं शान्ति:, शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि ॥
ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: ॥

॥अथ नामरामायणम्॥

॥बालकाण्डः॥

शुद्धब्रह्मपरात्पर राम्।
कालात्मकपरमेश्वर राम्।
शेषतल्पसुखनिद्रित राम्।
ब्रह्माद्यमरप्रार्थित राम्।
चण्डकिरणकुलमण्डन राम्।
श्रीमद्दशरथनन्दन राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

कौसल्यासुखवर्धन राम्।
विश्वामित्रप्रियधन राम्।
घोरताटकाघातक राम्।
मारीचादिनिपातक राम्।
कौशिकमखसंरक्षक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

श्रीमदहल्योद्धारक राम्।
गौतममुनिसम्पूजित राम्।
सुरमुनिवरगणसंस्तुत राम्।
नाविकधाविकमृदुपद राम्।
मिथिलापुरजनमोहक राम्।
विदेहमानसरञ्जक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

त्र्यम्बककार्मुखभञ्जक राम्।
सीतार्पितवरमालिक राम्।
कृतवैवाहिककौतुक राम्।
भार्गवदर्पविनाशक राम्।
श्रीमदयोध्यापालक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ अयोध्याकाण्डः॥

अगणितगुणगणभूषित राम्।
अवनीतनयाकामित राम्।
राकाचन्द्रसमानन राम्।
पितृवाक्याश्रितकानन राम्।
प्रियगुहविनिवेदितपद राम्।
तत्क्षालितनिजमृदुपद राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

भरद्वाजमुखानन्दक राम्।
चित्रकूटाद्रिनिकेतन राम्।
दशरथसन्ततचिन्तित राम्।
कैकेयीतनयार्थित राम्।
विरचितनिजपितृकर्मक राम्।
भरतार्पितनिजपादुक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ अरण्यकाण्डः॥

दण्डकावनजनपावन राम्।
दुष्टविराधविनाशन राम्।
शरभङ्गसुतीक्ष्णार्चित राम्।
अगस्त्यानुग्रहवर्धित राम्।
गृध्राधिपसंसेवित राम्।
पञ्चवटीतटसुस्थित राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

शूर्पणखार्त्तिविधायक राम्।
खरदूषणमुखसूदक राम्।
सीताप्रियहरिणानुग राम्।
मारीचार्तिकृताशुग राम्।
विनष्टसीतान्वेषक राम्।
गृध्राधिपगतिदायक राम्।
शबरीदत्तफलाशन राम्।
कबन्धबाहुच्छेदन राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ किष्किन्धाकाण्डः॥

हनुमत्सेवितनिजपद राम्।
नतसुग्रीवाभीष्टद राम्।
गर्वितवालिसंहारक राम्।
वानरदूतप्रेषक राम्।
हितकरलक्ष्मणसंयुत राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ सुन्दरकाण्डः॥

कपिवरसन्ततसंस्मृत राम्।
तद्गतिविघ्नध्वंसक राम्।
सीताप्राणाधारक राम्।
दुष्टदशाननदूषित राम्।
शिष्टहनूमद्भूषित राम्।
सीतवेदितकाकावन राम्।
कृतचूडामणिदर्शन राम्।
कपिवरवचनाश्वासित राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ युद्धकाण्डः॥

रावणनिधनप्रस्थित राम्।
वानरसैन्यसमावृत राम्।
शोषितसरिदीशार्त्तित राम्।
विभीषणाभयदायक राम्।
पर्वतसेतुनिबन्धक राम्।
कुम्भकर्णशिरश्छेदक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

राक्षससङ्घविमर्धक राम्।
अहिमहिरावणचारण राम्।
संहृतदशमुखरावण राम्।

विधिभवमुखसुरसंस्तुत राम्।
खःस्थितदशरथवीक्षित राम्।
सीतादर्शनमोदित राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

अभिषिक्तविभीषणनत राम्।
पुष्पकयानारोहण राम्।
भरद्वाजाभिनिषेवण राम्।
भरतप्राणप्रियकर राम्।
साकेतपुरीभूषण राम्।
सकलस्वीयसमानस राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

रत्नलसत्पीठास्थित राम्।
पट्टाभिषेकालङ्कृत राम्।
पार्थिवकुलसम्मानित राम्।
विभीषणार्पितरङ्गक राम्।
कीशकुलानुग्रहकर राम्।
सकलजीवसंरक्षक राम्।
समस्तलोकोद्धारक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥ उत्तरकाण्डः ॥

आगत मुनिगण संस्तुत राम्।

विश्रुतदशकण्ठोद्भव राम्।
सितालिङ्गननिर्वृत राम्।
नीतिसुरक्षितजनपद राम्।
विपिनत्याजितजनकज राम्।
कारितलवणासुरवध राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

स्वर्गतशम्बुक संस्तुत राम्।
स्वतनयकुशलवनन्दित राम्।
अश्वमेधक्रतुदीक्षित राम्।
कालावेदितसुरपद राम्।
आयोध्यकजनमुक्तिद राम्।
विधिमुखविबुधानन्दक राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

तेजोमयनिजरूपक राम्।
संसृतिबन्धविमोचक राम्।
धर्मस्थापनतत्पर राम्।
भक्तिपरायणमुक्तिद राम्।
सर्वचराचरपालक राम्।
सर्वभवामयवारक राम्।
वैकुण्ठालयसंस्थित राम्।
नित्यनन्दपदस्थित राम्।

राम राम जय राजा राम्।
राम राम जय सीता राम्।

॥इति नामरामायणं सम्पूर्णम्॥